षष्ठम् अध्याय

6. देवेश ठाकुर के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय धार्मिक एवं दार्शनिक यथार्थ के विविध आयाम

धर्म वस्तुतः मानव-जीवन की मूलाधार भित्ति है जिसे प्राचीन समय से ही उदार-दृष्टिकोण के रूप में देखा जाता है । हमारे यहाँ इन्हें धारणात्मक नियमों की संज्ञा दी गई है ।[1] 'अमरकोश' में पुण्य, सुकृत आदि धर्म के पर्याय कहे गए हैं ।[2] 'महाभारत' में भी घोषणा की गई है कि जो धर्म हमारे धर्म को बाधित करता है, वह अधर्म है ।[3] किन्तु हिन्दू धर्म में व्यावहारिक रूप में धर्म के द्वारा उदारवादी स्वर को ग्रहण करने का कोई गहरा प्रभाव प्रस्तुत नहीं किया । कतिपय अनुष्ठान, व्रत, तीर्थाटन, मन्दिर, विशिष्ट देवी-देवताओं के स्त्रोत तक ही धर्म की परिभाषा सीमित रह गई है।[4]

भारत में धर्म का बहुत महत्त्व है । 'धर्म' शब्द अंग्रेजी के 'Religion' शब्द से बना है । हमारे देश में मध्यमवर्ग ही धर्म का सबसे बड़ा रखवाला है । शिक्षित होने के पश्चात् भी मध्यमवर्ग की धर्म के प्रति आस्था कम नहीं हुई । अन्धविश्वासों, भाग्यवाद, पाप के फल में विश्वास और सड़ी-गली परम्पराओं के प्रति उसने मोह त्याग दिया है परन्तु फिर भी वह इनसे पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हुआ। मध्यमवर्ग का अशिक्षित और ग्रामीण वर्ग इनमें पूरा विश्वास स्थापित किए हुए है, क्योंकि मनुष्य प्राचीन संस्कारों से जल्दी छुटकारा नहीं पा सकता । यही कारण है कि शिक्षित व्यक्ति भी परम्परा का कहीं-न-कहीं पालन करता ही रहता है । एक बार जब धर्म का

---

1. मनुस्मृतिः टीकाकार पण्डित केशव प्रसाद, संस्करण सम्वत् 1955 वि०, 1/139
2. अमरकोशः 4,42 आवृत्ति 2, 1957, चौखम्बा संस्कृत-सीरीज ऑफिस, वाराणसी
3. महाभारत, वनपर्व, 131/11, पृ० 563
4. 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 198

स्वरूप बन जाता है तो हमेशा रूढ़िगत तत्त्व उपस्थित रहते हैं और वह रूढ़ि सभी चेतना-क्षेत्रों में एक जबरदस्त परमपरावादी शक्ति का काम करती है ।

मध्यमवर्ग की मानसिकता भी उसके धर्म-परायण होने का कारण है। इस वर्ग का व्यक्ति स्थितियों के समक्ष शीघ्र ही हार स्वीकार कर लेता है । वह अपने आपको निर्बल और असहाय मानता है तथा ईश्वर को सर्वशक्तिमान एवं बलशाली मानता है । वह प्रत्येक घटना या समस्या के लिए भाग्य को ही जिम्मेदार ठहराता है । मध्यमवर्गीय परिवार का व्यक्ति अपनी स्वभावगत भीरूता, क्षीण मनोबल के कारण ही हर बात के लिए अज्ञात सत्ता के प्रति नतमस्तक हो जाता है । धर्म के साथ-साथ दर्शन से संबंधित बहुत-सी बातों का ज्ञान भी मध्यमवर्ग को है जो समय-समय पर इनकी विचारधारा से व्यक्त हो जाता है । दर्शन जिसे अंग्रेजी में 'Philosophy' कहते हैं, यूनानी भाषा के दो शब्द 'Philos' तथा 'Sophia' शब्दों से मिलकर बना है । Philos का अर्थ है प्रेम तथा Sophia का अर्थ है ज्ञान । वह व्यक्ति जो प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के लिए रूचि रखता है तथा जो सीखने का इच्दुक हो तथा जिसको सीखते-सीखते संतुष्टि नहीं होती, दार्शनिकता कहा जाता है।

दर्शन उचित ढंग से अनवरत विचरने की कला है जो मानव-जीवन के सम्बन्ध में किसी भी रूप में आने वाली सभी वस्तुओं के संबंध में तर्कपूर्ण ढंग से विचार करता है । दर्शन की उत्पत्ति मनुष्य की जिज्ञासा से हुई है और इस जिज्ञासा की खोज ही दर्शन है । मनुष्य चाहे पश्चिम का हो या पूर्व का वह मनुष्य है; मनुष्य होने के नाते सोचना उसकी स्वाभाविक क्रिया है। अत: प्रत्येक देश का अपना दर्शन होता है। दृष्टिकोण में अन्तर भले ही हो, पर किसी भी देश के दर्शन की उत्पत्ति जिज्ञासा की शान्ति के लिए ही होती है ।[1] मध्यमवर्ग का व्यक्ति भी इसी प्रकार की जिज्ञासा रखता है और वस्तुओं के संबंध में तर्कपूर्ण ढंग से विचार व्यक्त करता है ।

---

1. प्रो॰ अशोक कुमार वर्मा, तत्त्व मीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा, पृ॰ 4

मानव-जीवन में धर्म और दर्शन दोनों का विशिष्ट महत्त्व है । धर्म जिज्ञासा और ब्रह्म जिज्ञासा, दोनों ही दर्शन के प्रतिपाद्य विषय हैं। कर्म और ज्ञान या मीमांसा दोनों दर्शनों का आरंभ धर्म की जिज्ञासा से हुआ है । दर्शन का धर्म के साथ घनिष्ठ संबंध है । दार्शनिक विचारों की आधारशिला के बिना धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है और धार्मिक आचार के रूप में कार्यान्वित किए बिना दर्शन की स्थिति निष्फल है ।

धर्म जीवन को प्रेरणा देता है तथा गति एवं समृद्धि के लिए एक उत्तेजना का काम करता है । जब दार्शनिक विचारधारा बुद्धि को तीक्ष्ण करती है, एक विशेष प्रकाश देती है तथा बौद्धिक क्षेत्र का विस्तार कराती है । अवेशपूर्ण दर्शन ही धर्म का रूप धारण कर लेता है । धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो प्राप्त की जाए अथवा जिसे बाह्य वस्तु की भान्ति अर्जित किया जाए अपितु वह तो मनुष्य का अपना स्वरूप है जो अशुद्धियों का निराकरण होते ही स्वयं को अभिव्यक्त करता है ।"[1] धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है जिसमें 'आत्मवाद एवं मानववाद' सम्मिलित है ।"[2]

धर्म और दर्शन में अनेक बातों की समानता है । दर्शन और धर्म दोनों का विषय सम्पूर्ण विश्व है । दर्शन मनुष्य की अनुभूतियों की यूक्तिपूर्ण व्याख्या कर सम्पूर्ण विश्व के आधारभूत सिद्धान्तों की खोज करता है । धर्म भी आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व की व्याख्या करने का प्रयास करता है । धर्म और दर्शन दोनों मानवीय ज्ञान की योगयता में विश्वास करते हैं । चरम सत्ता तथा मनुष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित करना धर्म का कर्त्तव्य है ।

दर्शन से मनुष्य की बौद्धिक जिज्ञासा की तुष्टि होती है परन्तु धर्म से मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की तुष्टि होती है । दर्शन सम्पूर्ण जीवन संबंधी समस्या का उत्तर तर्क से देता है जबकि धर्म इसका उत्तर विश्वास से देता है।

---

1. डॉ० सुरेन्द्र नाथ दास गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-4, पृ०11
2. डॉ० मीरा गौतम, सूर काव्य में लोक दृष्टि का विश्लेषण, पृ० 393

देवेश ठाकुर ने भी अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय धार्मिक एवं दार्शनिक यथार्थ को बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है ।

6.1 नारी पर संस्कारों का प्रभाव

नारी का मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है । नारी और पुरुष दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं । हमारे समाज में नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता है । इस समाज में नारी के कुछ संस्कार होते हैं जो उसे अपने परिवार और समाज से मिले होते हैं । इन्हीं को ध्यान में रखकर वह अपना कार्य करती है । मध्यमवर्गीय नारी पर तो संस्कारों का और भी अधिक प्रभाव पड़ता है, जिस कारण से वह अपना जीवन अच्छे ढंग से जीने का प्रयास करती है । मध्यमवर्गीय समाज की नारियां अपने-अपने ढंग से जीवन जीना चाहती हैं । कुछ तो अपने परिवार और मान-मर्यादा का ध्यान रखती है और कुछ मजबूरीवश वासना का शिकार होकर अपना जीवन व्यतीत करती हैं । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिए' में नारी पर संस्कारों का प्रभाव दिखाया है कि जब मीनाक्षी के पिता-माता की मृत्यु हो जाती है तो उसके बाद रिश्ते में अंकल लगने वाले व्यक्ति ने उसे संभाला और अपनी वासना का शिकार बनाया। इसीलिए उसे निर्णय लेना पड़ता है कि वह अब मुक्त में अपने शरीर को नहीं नुचवाएगी और वेश्या का धंधा करेगी । इसी बीच उसकी मुलाकात अवस्थी नामक युवक से होती है । वे दोनों प्यार करने लगते हैं लेकिन अवस्थी को उसके बारे में कुछ भी नहीं पता था । मीनाक्षी अपने बारे में उसे सारी बातें बता देती है और उससे शादी नहीं करना चाहती । एक पत्र के माध्यम से वह बताती है । "लेकिन तुम....? तुम मध्यमवर्गीय संस्कारों वाले एक भले इंसान लगे मुझे । तुम्हें धोखे में रखना मुझे अपराध की तरह सालता रहा है ।

लेकिन मेरी परिस्थितियाँ, मेरे संस्कार और मेरा लक्ष्य तुमसे भिन्न है-भिन्न हो गया है । मैं इसीलिए तुम्हें अपने साथ लेकर नहीं चलना चाह रही। इसीलिए तुमसे प्रार्थना करती हूं कि कभी किसी रास्ते पर अक्समात् मिल भी जाओ तो घृणा से मुंह मत मोड़ लेना । इतना सब कहने-लिखने के बाद भी

तुमने ऐसा किया तो मैं आहत हो जाऊँगी और मैं तुमसे आहत नहीं होना चाहती।"[1] मध्यमवर्गीय नारी पर संस्कारों का इतना प्रभाव है कि वह किसी पुरुष को चाहते हुए भी उसे अपना नहीं पाती और अपना जीवन अपने ढंग से ही जीना चाहती है । इसके साथ-साथ उच्च मध्यमवर्गीय नारी को संस्कारों की वजह से यह भीड़ भरी जिंदगी ऊबाऊ-सी लगती है और वह अकेले रहकर खुशनुमा माहौल बनाना चाहती है और किसी एकान्त पार्क में बैठकर शान्त मन से आनंद लेना चाहती है । 'अपना-अपना आकाश' की प्रिया भी अकेले शान्त बैठकर निरुद्देश्य रहना चाहती है । "कभी-कभ्ज्ञी उसे ऐसा लगता है कि खाली बैठे रहना भी एक उद्देश्य हो सकता है । बम्बई की जिन्दगी बेहद व्यस्त और क्रुर है.... अपने में सिमटी हुई..... । यहाँ खालीपन भी एक सुख दे जाता है । चम्पा की झालर के नीचे यह छोटी-सी मेज हो और कॉफी का प्याला हो... और आराम कुर्सी पर पसरी हुई वह कुछ न सोच रही है.... । वह सोचने लगती है.... सचमुच कभी-कभी खाली होना और कुछ न सोचना भी इंसान को कितना भरा-भरा बना देता है.... ।"[2] उच्च मध्यमवर्गीय प्रिया हमेशा शान्ति में रही है और उसने कभी अभाव नहीं देखा । वह एक अच्छी जिंदगी जीना चाहती है। उसके संस्कार ऐसे हैं जिसमें किसी-भी प्रकार का छल-कपट और वैरभाव नहीं है । वह खुशी का जीवन व्यतीत करना चाहती है । एक स्थान पर वह अपने प्रेमी प्रकाश को अपने मध्यमवर्गीय संस्कारों के बारे में बता रही है। "खुशनसीबी मेरी भी कम नहीं है प्रकाश.... बचपन से ही मेरा माहौल कुछ ऐसा रहा है कि मैं न तनाव बर्दाश्त कर सकती हूँ, न संघर्ष । एक शान्त जिन्दगी मुझे अच्छी लगती है । अभाव मैंने जाने नहीं । इसलिए न कुंठाएँ हैं, न लड़ने-भिड़ने की आदत । तुमने कभी जाड़ों के दिनों में भर दोपहर के बीच, पूरे समन्दर में बहती हुई हल्की-हल्की लहरों को देखा

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 50
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना प्रकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 125

है? अपने लिए कुछ ऐसी ही जिन्दगी मैं भी चाहती हूं । संगीत, कविता, भावना, अपनापन, अपनेपन की छुअन-कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति मेरी बन गई है ।"[1] मध्यमवर्गीय नारी बिल्कुल खुलकर और मजे में जीना चाहती हैं । उनको संस्कारों में बहुत-सी ऐसी चीजें प्राप्त होती हैं जो इनमें सकारात्मक सोच पैदा करती हैं । उच्च मध्यमवर्गीय प्रिया को भी कुछ ऐसे ही संस्कार मिले हैं, जो वह सुबोध के साथ बांट रही है।

"बहुत ठीक है वैसे अपने को ब्लैक कॉफी विद्आउट शुगर भी चलती है..... देखिए, इसीलिए तो अपना कॉम्प्लेक्शन कितना काला हो गया है....'

- आप काले कहाँ है ।' प्रिया सुबोध की ओर देखते हुए हंसने लगती है ।

- आप बड़ी उदार हैं ।'

- जी?'

- मेरा मतलब है, अगर आप मुझे काला नहीं समझती तो दुनिया की हर चीज आपके लिए गोरी और सुनहरी होगी ।"[2]

मध्यमवर्गीय नारी पर अपने संस्कारों के अनुसार सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं । यदि नारी को अपने जीवन में अच्छा परिवार मिलता है तो उसके संस्कार सकारात्मक होते हैं और वह अपना जीवन अच्छे ढंग और शान्ति से जीना चाहती है । लेकिन यदि अच्छा परिवार नहीं मिलता यानि कि माता-पिता न हों और उसे कोई और पाले तो उसका जीवन दुभर बन जाता है । उसे अच्छा बनने का मौका ही नहीं मिल पाता । नारी अपने जीवन तो अच्छे ढंग से जीना चाहती है लेकिन उसके संस्कार उसके जीवन में परिवर्तन कर देते हैं । मध्यमवर्गीय नारी के कुछ ऐसे संस्कार भी मिलते हैं जिनके कारण वह भीड़-भाड़ और व्यस्तता का जीवन स्वीकार नहीं कर पाती और अकेले मजे में रहकर अच्छा जीवन जीना चाहती है ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना प्रकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 125 पृ० 176
2. वही, पृ० 228

6.2 पुरुषों पर संस्कारों का प्रभाव

समाज के तीन वर्गों में मध्यमवर्ग सबसे अधिक संवेदनशील होता है । इसमें विभिन्न प्रकार के संस्कार होते हैं जो व्यक्ति को अपना जीवन जीने का तरीका बताते हैं । मध्यमवर्ग में पुरुषों पर संस्कारों का प्रभाव पड़ता है जिसके कारण वे अपने ढंग से जीवन जीने के लिए मजबूर होते हैं । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिए' में दिखाया है कि मध्यमवर्गीय रघुवंशी को संस्कारों के कारण हर प्रकार के अनुभव हो जाते है । "रघुवंशी शायद ठीक कहता है । मैंने अपनी छोटी-सी जिंदगी में क्या-क्या नहीं देख लिया । कभी-कभी अपने को अपनी जमीन से बिल्कुल उखड़ा हुआ महसूस करता हूँ । रघुवंशी की बातों को सोचता हूं तो उनमें बड़ी सच्चाई नजर आती है, वह कितना अनुभवी है । उसने इतने अनुभव कैसे हासिल कर लिये, लोग इतने अनुभवी, इतने वस्तुपरक, इतने शार्प कैसे हो जाते हैं ।"[1] समय के साथ मानव को बहुत अनुभव हो जाते हैं ओर वही मध्यमवर्गीय रघुवंशी को हुए । इसके साथ-साथ मध्यमवर्गीय अवस्थी को भी अपने संस्कारों के कारण बहुत कुछ सीखने को मिला है । इन्हीं संस्कारों के कारण ही उसे सदा दु:ख सहने पड़े हैं जिस कारण वह हमेशा निराश रहता है और जिन्दगी उसे बोझ लगती है जिसे वह अब तक ढो रहा है । "रघुवंशी मेरा हितैषी है । मुझे उसकी बात माननी ही चाहिये । नारी के कारण ही तो मेरा सारा जीवन यातना शिविर बना । मेरी मां, मैं मां का अवैध बेटा हूं । मां के कारण, उसके साथ-साथ मेरा जीवन भी नरक बना रहा । फिर मीनाक्षी के प्रति आकर्षित हुआ, उससे भी मुझे एक ठण्डी दाह के अलावा क्या मिला? और फिर चन्द्रा आई । पत्नी चन्द्रा, मैं मानता हूं, उसने मेरी तरफ से मुझे कोई दु:ख नहीं दिया । लेकिन मैं तो दु:खी हुआ ही, पति बनकर भी मैंने क्या पाया । पिता भी बना-लेकिन वह पितृत्व भी एक गहरी कोंच छोड़ गया । ऐसी कोंच, जिसकी

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 97

तड़प अब तक ढो रहा हूँ ।"[1] मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपने को नारी द्वारा दु:खी मानता है लेकिन उसके संस्कार ही कुछ ऐसे हैं जो उसे दु:खी बना रहे हैं और उसकी तड़प को निरन्तर बढ़ा रहे हैं लेकिन इसके साथ-साथ उसकी एक दुनिया है जिसमें वह अच्छे ढंग से जीना चाहता है और फूलों और कलियों से मिल जाना चाहता है । यह केवल उसके लिए मनोरंजन से बढ़कर कुछ नहीं। उसने जीवन को खुशी से जीने की सोचा था लेकिन उसका जीवन तो कुछ परिस्थितियों के नरक के समान बन गया है । वह कहता है कि इस जीवन में आराम कहाँ रह गया है । सभी जगह मारा-मारी है और उसने यह भी कहा है कि यहाँ इस संसार में कला कोई महत्त्व नहीं देता और वह तो केवल मन बहलाने का एक साधनमात्र बन गई है । वह कहता है कि मेरे जैसा संस्कारों वाला व्यक्ति तो यहाँ कला के सहारे नहीं जी सकता। "सवाल उठता है कि तुम किसे ज्यादा महत्त्व देते हो । अपने कलाकार को या अपने भविष्य को । इस देश में प्रिया, कला को लोगों ने बड़ा चीप बना दिया है। उसे कैरियर नहीं बनाया जा सकता । कम-से-कम मेरे जैसे संस्कारों का आदमी यहाँ कला के सहारे नहीं जी सकता ।"[2] क्योंकि कला उसे वह सब नहीं दे पाती, जो वह अपने इस जीवन में पाना चाहात है और इस संसार में अपना वजूद बनाये रख सके। देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'गुरुकुल' में उच्च मध्यमवर्गीय पुरुषों के संस्कारों को बताते हुए कहा है कि इस प्रकार के पुरुषों के मन पर सदा सेक्स की भावना रहती है और वे इस प्रकार की बातें कहते नहीं शर्माते और अपने किसी दोस्त या शोधछात्र से यह कहते भी नहीं शर्माते कि उन्हें किसी औरत का साथ चाहिये, जिसे वो भोग सकें। उन्होंने इस प्रकार के लोगों को समाज का घटियापन कहा है । यहाँ पर ओछेलाल के इस प्रकार के मध्यमवर्गीय संस्कार है। "आप होते तो हमें किसी और कम्पनी की

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिए), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 98
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना प्रकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 170

जरूरत ही नहीं पड़ती । लेकिन अब आप यहाँ हैं, ही नहीं तो फिर तो कुछ न कुछ आपको करना ही पड़ेगा..... ।'

बैंगन के भरते को किसी तरह मुंह में डालते हुए डॉ० ओछेलाल ने भरी हुई आंखों से डॉ० जैन की ओर देखा । फिर झुमते हुए अंदाज में बोले- 'जैन' ।

- 'जी सर ।' डॉ० जैन जल्दी से अपने मुंह का कौर गले के नीचे उतार लिया ।

- 'देखो, कपूर साहब संडे को खण्डाला जा रहे हैं । तुम्हें मालूम है इनका होटल है वहाँ और इन्हें कम्पनी चाहिये ।'

- 'तो मैं इनके साथ चला जाऊँ सर ।'

- 'बेवकूफ कहीं का? तेरा आचार डालेंगे वहाँ?'

- 'तो सर ।' डॉ० जैन के मुंह से शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे ।

- 'देखो.... अपनी नीला सबनिस को इनके साथ भेज दो। शाम तक... लौट आयेंगे ये । क्यों कपूर साहब.... ।"[1] इस वर्ग के पुरुषों को जिस प्रकार के संस्कार मिलते उसी के अनुरूप उनकी सोच बनती है। 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में वेशाली जब आचार्य सदानंद से बार-बार प्रश्न पूछती है ओर उसे उलझाना चाहती है तो सदानंद इस पर अपने संस्कारों की बात करता है कि मनुष्य के संस्कार ही उसे कार्य करने पर मजबूर करते हैं । वह कहता है, "वही लिखे जो समाज को स्वस्थ जीवन की प्रेरणा दे सके । क्यों आप यही कहना चाहती हैं न। लेकिन आप यह क्यों नहीं समझती कि लेखक भी इंसान होता है और इंसान में कुछ कमजोरियां भी होती हैं । उसकी अपनी परिस्थितियां होती हैं जिनसे उसका संस्कार बनता है । कभी-कभी ये परिस्थितियां और संस्कार इतने गहरे हो जाते हैं कि वह इनके अलावा कुछ सोच ही नहीं पाता । चाह कर भी नहीं सोच पाता । आप ऐस व्यक्ति की

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (गुरुकुल), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 89

विवशता को क्यों नहीं समझतीं... ।"[1] आचार्य सदानंद और संस्कारों के कारण ही विचलित है और अपना साहित्य भी उसी ढंग से लिखता है ।

मध्यमवर्गीय पुरुषों को संस्कारों में ऐसी चीजें मिलती हैं जो वस्तु उन्हें पसन्द है, चाहकर भी वे उसे प्राप्त नहीं कर पाते । 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में दिखाया गया है । "मुझे लगा कि मेरा रक्तचाप एकाएक बढ़ गया है । मेरी आदत है । मैं पाने में, अपनी कोशिश से पाने में विश्वास करता हूं... कोई स्वेच्छा से अपना सर्वस्व भी मुझे दे दे तो मैं उसे स्वीकार नहीं कर पाता । मैं सोचता रह गया - इस सामने बैठी, सुन्दर महिला को इसका क्या जवाब दूं... । मुझसे कुछ भी कहते नहीं बना । इसलिए खामोश रह गया ।"[2]

मध्यमवर्गीय पुरुषों को अपने संस्कारों के कारण विभिन्न प्रकार की अच्छाइयों और बुराइयों का ज्ञान होता है । व अपना जीवन अपने संस्कारों के अनुसार ही व्यतीत करना चाहते हैं । जीवन में होने वाली हर प्रकार की घटना को वे लोग अपने संस्कारों से जोड़ते हैं तथा जीवन की विवशता को भी अपने संस्कार मानते हैं। उन पर अपने संस्कारों का विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है तथा वे जीवन में आने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं को भी संस्कार मानकर झेलते रहते हैं । एक तरफ तो निम्न मध्यमवर्गीय पुरुष साफ और सीधी-सादी जिंदगी जीना चाहता है लेकिन वह भी उसे उसके संस्कारों के कारण नहीं मिल पाती और उसे पूरी जिन्दगी दु:खों में व्यतीत करनी पड़ती है तो दूसरी ओर उच्च मध्यमवर्गीय पुरुष सेक्स को ही अपना जीवन मानते हैं और किसी भी बात को कहते नहीं शर्माते तथा लोगों पर अपने पैसे के बल पर दबाव बनाना चाहते हैं ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (शून्य से शिखर तक), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 126
2. वही, पृ० 213

6.3 अपशकुन-शकुन का चित्रण

मध्यमवर्ग समाज का वह वर्ग है जिसमें सोचने-समझने की क्षमता होती है लेकिन यह वर्ग अपशकुन-शकुन में भी विश्वास करता है और जीवन में कुछ नया होने की आशंका के प्रमाण उन्हें पहले ही प्राप्त हो जाते हैं जिससे वह चिंता और व्याग्रता में पड़ जाता है कि कहीं कुछ बुरा न हो जाए । 'इसीलिये' उपन्यास में अवस्थी की ये बातें उसके मन की चिंता को बताती हैं। "तब मां ने मेरी ओर देखा था मैं उसे क्या बतलाता । मुझे खुद पता नहीं था- क्या हो गया है । लेकिन इतना जरूर अन्दाज लगा लिया था कि ऑपरेशन थियेटर के भीतर सब कुछ सामान्य नहीं है ।

उसके बाद समय की सूइयाँ रेंगती रहीं । एक बजा, तीन बजे, चार बजे.... । मेरी व्याग्रता बढ़ती गई । इस बीच कोई भी डॉक्टर थियेटर से बाहर नहीं निकला । फिर साढ़े चार, पांच बज गए । मैं कई बार टॉयलेट हो आया । पूरी देह सुन्न होती-सी महसूस होने लगी । अजीब-अजीब तरह के ख्याल जहन में आते.... और मैं उन्हें झटकने की कोशि करता ।"[1] मध्यमवर्गीय व्यक्ति लाख चाहने से भी अपने जहन से अपशकुन की बातें नहीं निकाल पाता और निरन्तर उनमें फंसता चला जाता है । कई बार उसे भयानक सपने भी आते हैं जिन्हें सोच-सोचकर उसके सिर में दर्द तक भी हो जाता है और उसकी आंखों के सामने अन्धेरा छा जाता है । 'इसीलिये' उपन्यास का अवस्थी सोचता है । "मन भी क्या चीज है । कहाँ से कहाँ उड़ जाता है यह । इसकी कोई सीमा नहीं है । उस भयानक सपने के बाद रात भर सो नहीं सका । दिन भर परेशान रहा हूं । अभी तक सिर भारी है । क्या मीनाक्षी को कुछ हो तो नहीं गया? कैसे हो सकता है? तो फिर वह मिली क्यों नहीं । लेकिन वह रोज मिलती कहाँ है? मैं भी तो पागल हो गया हूं। मेरी मीनाक्षी का कोई अहित नहीं हो सकता है । लेकिन कल रात का

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 14-15

सपना।"[1] पहले होने वाली बातें हमेशा इस वर्ग को तंग करती हैं और उनमें कुछ बुरा होने की आशंका पैदा कर देती हैं जिससे यह वर्ग हमेशा बेचैन रहना है और भविष्य के प्रति चिंता पैदा हो जाती है । इस बात को लेकर जब मीनाक्षी बस पकड़ने के चक्कर में होती है तो वह गिर पड़ने को होती है जिससे अवस्थी के मन में आता है, कहीं कोई अपशकुन न हो जाए और वह इस बारे में चिंता करता है और उसकी आंखों के सामने अंधकार छा जाता है । "डिनर के बाद हम दोनों बस स्टॉप पर आ गए । जैसे ही हम स्टॉप पर पहुंचे, बस चलने लगी । मीनाक्षी ने लपक कर बस पकड़नी चाही लेकिन रेलिंग को एक हाथ से पकड़े वह उस पर झूल गई और दो-तीन गज तक फिसलती चली गई ।

मैं एक आवाज चिल्लाकर बस स्टॉप पर ही खड़ा रह गया था। मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया था ।"[2] इस वर्ग के लोगों में इस प्रकार की भावना देखी जा सकती है । 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में विलास को जब चोटें लगती हैं और उसे अस्पताल लाया जाता है । उस समय वैशाली उसकी स्थिति को देखकर बार-बार शंकाकुल और व्याकुल हो रही है । उसके मन में भय-सा बना रहता है जब तक वह ऑपरेशन थियेटर में रहता है और अस्पताल में पीड़ा-से जूझ रहा होता है । "लेकिन बड़ी कोशिशों के बाद भी उसे नींद नहीं आ पाई । बार्ड के बिस्तर पर पड़ा घायल विलास और उसके घायल शरीर पर ऑपरेशन थियेटर में नश्तर चलाते डॉक्टरों के गंभीर चेहरों की कल्पना उसे शंकाकुल करती रही । फिर एकाएक उसे महसूस हुआ कि एक जोर की चीख के साथ विलास की कायाशिथिल होकर ऑपरेशन टेबल पर पसर गयी है ।"[3]

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 32
2. वही, पृ० 34
3. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (शून्य से शिखर तक), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 195

मध्यमवर्गीय लोग अपशकुन-शकुन में विश्वास करते हैं तथा कोई भी अच्छी या बुरी परिस्थित हो जाये तो उसी के अनुसार ही वो सोचते हैं कि कहीं कुछ बुरा न हो जाये । इस वर्ग के लोग पहले से ही किसी बात के बारे में पहले ही निर्णय बना लेते हैं । इस वर्ग के लोग चिन्तनशील होते हैं और हमेशा कुछ न कुछ विचार अपने मन में लाते रहते हैं, जिस कारण किसी भी बात को देखकर या सुनकर उनके मन में किसी बात के होने की आशंका पैदा हो जाती है और वे अपशकुन-शकुन के चक्कर में पड़ जाते हैं और उन्हें भविष्य के प्रति चिंता हो जाती है ।

6.4 निराशावादिता का चित्रण

निराशा मानव जीवन को दु:ख और कुण्ठा से भर देती है और निराश व्यक्ति कभी भी सकारातमक नहीं बन पाता । फिर भी यदि वह सकारात्मक बनने की कोशिश भी करता है तो कोई-न-कोई बात उसे नीचे ढकेल ही देती है । निराशा के होते हुए भी मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपने आप को खुश दिखाने का प्रयत्न करता है लेकिन यह उसकी खुशी क्षणभंगुर होती है जो किसी-न-किसी निराशा के कारण खो जाती है । 'इसीलिए' उपन्यास के अवस्थी की यही स्थिति है । वह कह रहा है "मैंने कब तुमसे तुम्हारा परिवेश पूछा था । कब तुम्हारा इतिहास जानना चाहा था मैंने । तुमने मुझे वह सब क्यों बतला दिया, जिसे मैंने तुमसे कभी पूछा ही नहीं था। मै भी तुम्हारी तरह अभागा रहा हूं । लेकिन मैंने तो अपने दुर्भाग्य का रोना तुम्हारे सामने कभी नहीं रोया । फिर तुम्हीं क्यों इतनी स्पष्टवादिनी बन गई । तुम जानती हो, तुमने ऐसा करके मेरे काल्पनिक सुख को भी एक गहरी, संकरी और अंधेरी गली में ढकेल दिया है जहाँ से मै कभी नहीं उबर सकूँगा।"[1] मध्यमवर्गीय व्यक्ति आगे बढ़ने की लालसा लिए निरन्तर कार्य करता है लेकिन एक निराशा भरी वाणी उसे नीचे ला देती है और उसके जीवन को अंधेरे में डाल देती है जिससे उसके जीवन में उदासी छा जाती है। उदासी के कारण

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 52

ही उसमें नकारात्मक सोच पैदा हो जाती है और निराशा भरा जीवन व्यतीत करने पर मजबूर हो जाता है । "अब तो हमेशा बनी रहने वाली यह उदासी ही अपनी है । इस उदासी की रेत से मैं अपना नाम लिखता रहूंगा । अपना नाम मिटाता रहूंगा । हर नाम को एक दिन हमेशा के लिए मिटना होता है । मैं भी मिट जाऊँगा । इतनी बड़ी दुनिया में हर नाम बहुत छोटा होता है ।"[1] कई बार तो मध्यमवर्ग के लोगों की निराशा इतनी बढ़ जाती है कि वे इस जिन्दगी को व्यर्थ समझने लग जाते हैं और सब-कुछ होते हुए भी सूना-सूना सा लगने लग जाता है । वह अपनी हिम्मत तक खो देता है । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिये' में अवस्थी के जीवन को इसी प्रकार का दिखाया है । "इस जिंदगी का कोई मतलब ही नहीं रह गया है । इतना बड़ा घर कितना अकेला हो गया है। अकेला और खाली । इस खालीपन को लेकर कैसे, कब तक जी पाऊँगा । क्या मैं भी निरंजन की राह पकड़ लूं । लेकिन इसके लिए भी हिम्मत चाहिए । मैं तो हिम्मतहारा बनकर रह गया हूँ।[2] जब आदमी की हिम्मत खो जाती है तो उसे कुछ नहीं सूझता और वह अपनी नजरें दूसरी वस्तुओं की ओर डालता है जिससे उसे कुछ राहत मिल सके लेकिन जो निराशा मन में पैदा हो जाती है वह हमेशा दु:ख देने वाली होती है । इस दु:ख से छुटकारा पाने के लिए लोग दूसरी वस्तुओं का सहारा लेते हैं लेकिन वे सब चीजें क्षणभंगुर ही होती हैं जिनसे मन एक बार तो सुख प्राप्त कर लेता है परन्तु दूसरे ही पल निराशा फिर उसे उसी स्थिति में लाकर खड़ी कर देती है । "सामने का आकाश फिर साफ हो गया है । कहीं-कहीं पर बादलों के टुकड़े हैं । छितरे हुए । प्रिया की आंखों को आकाश साफ दिखाई दे रहा है । वह एकटक उसके विस्तार में बादल के टुकड़ों को भटकना देख रही है । उसके सामने औश्र चारा भी क्या है, जो दिखाई दे रहा है उसको देखने के अलावा और चारा भी क्या है, मन खाली हो या

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 56
2. वही, पृ० 63

लबालब भरा हुआ । भटकते हुए खुले आकाश की नीलिमा को कौन नहीं देखता? बगीचे की बैंच पर बैठकर फूलों के आकर्षण से कौन निरपेक्ष रह सकता है? तेज हवा के बीच लहराते हुए पेड़ों की फुनगियों पर किसकी नजर नहीं जाती?"

मध्यमवर्ग के लोगों में निराशावादिता भी स्थायी रूप में रहती है जो किसी भी परिस्थिति में उभर जाती है और उनके मन को दु:खी कर देती है। इस वर्ग में सोचने-विचारने की अपार क्षमता होती है । वह जीवन में निरन्तर आगे बढ़ने की सोचता है लेकिन कई प्रकार की बातें उनके जीवन में आशा लाने की बजाए निराशा ला देती हैं जिससे उनकी सोच नकारात्मक बन जाती है और वे इस स्थिति से उबर नहीं पाते । यदि उबरने की कोशिश करते भी हैं तो फिर से कोई न कोई ऐसी परिस्थिति आ ही जाती है जो उसके जीवन में निराशा भर देती है और उसका जीवन उदास और दूभर बन जाता है ।

6.5 पाप के फल में विश्वास का चित्रण

मध्यमवर्ग के लोग पाप-पुण्य के फल में विश्वास करते हैं। उनका मानना है कि कोई भी मनुष्य यदि पाप करता है तो उसे उसके पापों की सजा अवश्य मिलती है । इसलिए वे पाप करने से घबराते है तथा सदा अच्छे कार्य करने की सोचते हैं । 'इसीलिये' उपन्यास में पति द्वारा अपनी पत्नी को पिटे जाने पर जब पत्नी को घाव हो जाते थे तो अतीत के दिन उसे याद आते हैं तब जब उसके पति की मृत्यु पर उसकी चीर-फाड़ की बात होती है तो उसके चेहरे पर हल्की-सी रोशनी आ जाती है कि आज मेरे पति को भी वही अहसास होगा, जो मुझे उस समय उनसे पिटते समय होता था। पाप का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है । अवस्थी कह रहा है। "तभी डॉक्टर ने बतलाया था- लाश का पोस्टमार्टम होगा । मैंने डॉक्टर की बात मां को समझाई तो वह असमंजस में पड़ गई थी।

अब इनके शरीर की चीर-फाड़ होगी । तभी शायद उसे अपने शरीर पर बने पिटाई के निशान याद आ गए होंगे । उसने लम्बी सांस छोड़कर कहा था, ईक है जैसा तुम लोग ठीक समझो । उसके चेहरे पर एक क्षण के लिए

हल्की रोशनी आकर ठहर गई थी।"[1] और यह रोशनी उसके चेहरे पर इसलिए आई थी क्योंकि वह सोच रही थी कि मनुष्य को पाप का फल इसी जन्म में ही मिल जाता है । तब उसे अपने द्वारा किया हुआ पाप याद आता है जिसे वह निरन्तर भोग रही है और उसे कहीं भी चैन नहीं है । वह इस पाप और दु:ख का जिम्मेदार अपने पुत्र अवस्थी को ही मानती है और वह उसे छोड़ने का निर्णय बना लेती है । "मैं जा रही हूं । मुझे खोजने की कोशिश मत करना । मैं आत्महत्या नहीं करूंगी, दु:खों से मुक्ति मेरे भाग्य में नहीं है । अब जहाँ भी तकदीर ले जाए.... । वैसे तू ही मेरे दुर्भाग्य की जड़ रहा है.... लेकिन तूझे दोष कैसे दूं... दोषी तो मैं हूं । दोष का दण्ड मुझे ही भुगतना है । लेकिन देखती हूं, मेरे साथ तुझे भी भुगतना पड़ा है। तू अब भी भुगत रहा है । यह मुझसे देखा नहीं जाता । पूरा घर भूतहा लगता है। अब अपनी नई जिंदगी शुरू कर । सोच ले, पिछली जिन्दगी एक सपना थी। वह काला सपना टूट चुका है.... भोर हो गई है । हो सके तो मुझे माफ कर देना । मेरी वजह से तुझे बहुत सहना पड़ा है । लेकिन तू सोच, तेरे कारण मैं भी कहाँ सुखी रही । खैर.... ।"[2] मध्यमवर्गीय लोग पाप के कारण ही उनका दु:ख मानते हैं और एक ही परिवार के सदस्य एक-दूसरे को इसका दोषी मानते हैं कि एक के पाप के कारण ही दूसरा दु:खी है।

मध्यमवर्ग के लोगों का पाप और पुण्य के फल में भी विश्वास होता है । वे मानते हैं कि यदि इस जन्म में कोई पाप किया जाता है तो उसका फल भी इसी जन्म में मिल जाता है । वे लोग कोई भी कार्य करने से पूर्व यह सोचते हैं कि कहीं कोई पाप न हो जाये जिससे उन्हें जीवन में दु:ख झेलना पड़े । मध्यमवर्गीय परिवार में यदि एक व्यक्ति दु:खी होता है तो परिवार के दूसरे लोग उसके दु:ख का कारण उसके द्वारा किया हुआ पाप ही मानते हैं जिसे वह स्वयं तो भोग ही रहा है बल्कि उसके पारिवारिक सदस्य

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 17
2. वही, पृ० 382

भी उसे भोग रहे हैं । जिस कारण परिवार में चिंता बढ़ जाती है और उस परिवार में उस व्यक्ति का रहना भी मुश्किल हो जाता है ।

6.6 जीवन-दर्शन का चित्रण

साहित्य एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने आंतरिक भावों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कराता है । दूसरे शब्दों में, हम साहित्य को जीवन और जगत् के गतिशील सौंदर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं । साहित्य के अन्तर्गत हम साहित्य जगत् के दृश्य, समस्त द्वन्द्वों, मानव-जीवन की समस्त अनुभूतियों को अनुभूत कर सकते हैं । साहित्य जीवन की अनिवार्यता है और जीवन की व्याख्या ही साहित्य है । इसीलिए जीवन और साहित्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब का सम्बद्ध है । साहित्य के मूलतः चार तत्त्व किए जाते हैं - भाव तत्त्व, बुद्धि तत्त्व, कल्पना तत्त्व और शैली तत्त्व । साहित्य मानव की भावनाओं की अभिव्यक्ति है किन्तु उन भावनाओं को संयत, गंभीर और क्रमिक रूप प्रदान करने का कार्य बुद्धि का है, कल्पना उसमें सौंदर्य का संचार करती है, शैली इन तत्त्वों के सम्मिश्रण को साहित्य के रूप में डालने का प्रयास करती है ।

साहित्य के लिखने का प्रयास भाव तत्त्व के कारण पूर्ण होता है जो भाव साहित्य को किसी विषय पर कुछ लिखने को प्रेरित करते हैं । साहित्यकार साहित्य में अपनी भावनाओं का प्रस्तुतीकरण कराता है और देशकाल की सीमा का उल्लंघन करके सर्वदेशीय और सर्वकालिक साहित्य की सर्जना करता है । भावों के जागृत होने पर ही साहित्य लोकहित तथा लोकर्पण की वस्तु बन जाता है और व्यवहारिक जीवन में व्यक्त भावनाएँ ही व्यक्ति का जीवन-दर्शन कहलाती हैं ।

भाव तत्त्व की साहित्य का मूल तत्त्व है क्योंकि जब तक भाव ही न होंगे तो अभिव्यक्ति किस प्रकार हो पाएगी । कोई भी वस्तु, घटना, दृश्य अथवा स्थिति तक अभिव्यक्ति नहीं पा सकती, जब तक साहित्यकार के हृदय में उसके प्रति भाव जागृत न हो और भाव जागृति के लिए साहित्यकार का प्रतिभावान होना आवश्यक है। कुछ विशेष गुणों और प्रतिभा के कारण ही

सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा साहित्यकार संवेदनशील होता है इसलिए उसका जीवन-दर्शन भी सामान्य की अपेक्षा कुछ अधिक प्रभावशाली होता है । साहित्य में प्रतिबिम्बित जीवन-दर्शन में पाठक अपनी समस्याओं का समाधान खोजते हैं और अपने जीवन के उद्देश्य का निर्धारण करते हैं ।

इस संसार का निर्माण अनेक जीव-जन्तुओं व मानवों से हुआ है । सभी प्राणी अपने तरीके से सोचते-समझते व चिंतन करते हुए अपना जीवन-यापन करते हैं । प्रत्येक प्राणी में चिंतन-मनन की शक्ति होती है । मनुष्य अपनी बुद्धि की सहायता लेते हुए अपना तथा संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहता है । मानव केवल अपने वर्तमान लाभ के लिए सन्दर्भ में ही नहीं सोचता वरन् भविष्य के परिणामों के विषय में भी चिंतन करता है । अपनी बुद्धि की सहायता से ही वह युक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही 'दर्शन' कहते हैं।

दर्शन और जीवन का अटूट सम्बन्ध है । मानव जीवन और दर्शन दोनों एक ही उद्देश्य के दो परिणाम हैं । 'परमतत्त्व' की खोज करना ही दोनों तत्त्वों का अभिष्ट है । उसी का सैद्धान्तिक रूप दर्शन है और व्यावहारिक रूप समाज । दर्शन सामाजिक जीवन के विषय में विचार एवं चिन्तन करके एक सिद्धान्त प्रतिपादित करता है। इन सिद्धान्तों की कसौटी पर जीवन की वैज्ञानिकता का आंकलन करता है, जोकि दर्शन का लक्ष्य है ।

मध्यमवर्ग के लोगों में जीवन-दर्शन की बड़ी आकांक्षा रहती है और वे जीवन को अच्छी तरह समझकर उसे जीना चाहते हैं तथा वे लोगों के बारे में भी अच्छी जानकारी रखते हैं । देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'इसीलिये' में दिखाया है कि मध्यमवर्गीय लोग जिस वस्तु में रूचि नहीं लेते, उसी से मिलती-जुलती वस्तु उनमें बहुत-सी बातों का ज्ञान भर दती है तथा उनमें क्रान्ति ला देती है जिससे उनमें कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी लड़ने की क्षमता पैदा हो जाती है । "मै जानता हूं, अवस्थी ने कभी राजनीति में दिलचस्पी नहीं ली । राजनीति से उसका कोई वास्ता भी नहीं था । लेकिन उसका गैर राजनीतिक दर्शन आज की बड़ी-से-बड़ी राजनीति के सामने एक

प्रश्न चिन्ह लगा देता है । उसकी डायरी के दो-चार पृष्ठ आज कितने महत्त्वपूर्ण और अमूल्य लगते हैं । सच, अवस्थी ने एक क्रान्तिहीन क्रान्ति ला दी है । वैसे वह न कभी गांधीवादी रहा और न नक्सली । लेकिन ये दोनों ध्रुव उसकी जिन्दगी के नए मोड़ पर अन्ततः किस तरह एकाकार हो गए कितनी सहजता से एक-दूसरे में समा गए, यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है। एक आश्वस्ति होती है कि कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी समाधान का स्त्रोत फूट ही पड़ता है ।"[1] मानव मन में बहुत-सी उलझनें होती हैं । मनुष्य जितना अधिक सोचता है, उसकी उलझनें और भी अधिक बढ़ती जाती है । "सच, मन बड़ा उलझनपूर्ण होता है । इसके बारे में जितना सोचो, उतना ही उलझता जाता है । यह उलझन कभी खत्म नहीं होती । कभी खत्म हो ही नहीं सकती । कैसी अजब स्थिति है मन की और उस इंसान की भी जिसकी काया के भीतर यह मन छिपा रहता है ।"[2]

मध्यमवर्गीय लोगों के साथ-साथ उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के लोग भी पैसे को बहुत महत्त्व देते हैं । वे पैसे को भगवान मानते हैं जिससे वे सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं को ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन कुछ मध्यमवर्गीय लोग पैसे को इतना महत्त्व नहीं देते । वे कहते हैं कि पैसे से सुविधाएं तो खरीद सकते हैं लेकिन सुख नहीं। सुख तो मानसिक और आन्तरिक भावों द्वारा ही मिल सकता है, जो जीवन का आधार माना जाता है । "सोचता हूँ, कभी-कभी पैसा भी कितना मेतलब हो जाता है । लोग भी खूब हैं कि सुख की खोज में पैसे पर आकर अटक जाते हैं । सोचते हैं, पैसा ही उन्हें सुख खरीद देगा। पागल हैं ये लोग । पैसे से कुछ सुविधाएं तो खरीदी जा सकती हैं, सुख नहीं। और सुविधा, सुख दे - यह कोई जरूरी नहीं । पैसा तन के लिए कुछ आराम जुटा दे सही, लेकिन सुख तो मन का होता है । लेकिन तन और मन को अलगाएँ कैसे? बिना मन के तन कहाँ है और मन तन के बिना रहेगा

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 13
2. वही, पृ० 19

कहाँ? फिर भी...।"[1] मध्यमवर्गीय व्यक्ति जीवन को जीने के तरीके के साथ-साथ उसमें आने वाली कठिनाईयों को सहन नहीं कर पाता और निरन्तर इनसे बचता रहता है लेकिन एक समय के पश्चात् उसे इस बात का आभास होता है कि जिंदगी में सुख कहाँ, दु:ख ही दु:ख हैं । इसलिए मनुष्य को अपना जीवन बड़ी सहजता और सरलता से व्यतीत करना चाहिए । मनुष्य को स्वर्ग की इच्छा किए बिना ही निरन्तर अच्छे कार्य करते रहना चाहिए और जीवन में आने वाली कठिनाईयों का सामना करते हुए अपना जीवन जीना चाहिए । 'इसीलिये' उपन्यास में अवस्थी कह रहा है । "अब तो मैं बहुत थक गया हूं। अपने अगले वर्षों को बहुत सहजता औश्र निस्संगता के साथ जीना है। जो कुछ भी सामने आयेगा, उसे तटस्थता और निरपेक्षता के साथ सहूँगा । तभी जीवन जिया जा सकेगा । नहीं तो एक नरक के बाद दूसरे नरक में पड़ता रहूँगा । भले ही स्वर्ग न मिले, लेकिन जिंदगी को अब नकर नहीं होने दूंगा ।

रविन्द्रनाथ ने भी कहा है- एकला चलो रे । साथ-साथ चलते हुए भी अब अकेला चलूँगा । मेरे लिए जीवन जीने का यही एक विकल्प रह गया है।"[2]

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यास 'अपना-अपना आकाश' की चरित्र मध्यमवर्गीय प्रिया के माध्यम से जीवन की दार्शनिकता में समय के महत्त्व को दिखलाया है तथा मानव प्रवृत्ति को भी व्यक्त किया है कि वह समय के साथ चलते रहना चाहता है । समय तो निरन्तर गतिमान है लेकिन मनुष्य समय के साथ चलते-चलते रूक जाता है और उसकी जीवन यात्रा समाप्त हो जाती है परन्तु समय को कोई पछाड़ नहीं सकता क्योंकि वह तो निरन्तर गतिमान है और किसी के लिए भी नहीं रूकता ।" समय खुद भी भागता है और हमें भी भगाता है । लेकिन एक बिन्दु पर आकर हम भागते-भागते रूक

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 12
2. वही, पृ० 72

जाते हैं । हमारी यात्रा समाप्त हो गयी होती है । समय कभी नहीं रूकता । उसकी यात्रा अनंत है । हम, एक वक्त आने पर अकेले और असहाय रह जाते हैं । यहाँ का सब कुछ हमसे छूट जाता है । हमें तब महसूस होता है कि हमसे यहाँ का सभी कुछ ले लिया गया है । सभी कुछ विगत का अंश बन कर रह गया है। यह समय ही है, जो सब को अतीत बना देता है ।"[1] यहाँ पर दार्शनिकता व्यक्त की गई है कि समय निरन्तर गतिमान होता है और उसकी यात्रा अनंत होती है लेकिन मनुष्य की यात्रा एक निश्चित समय के उपरान्त समाप्त हो जाती है और वह एक समय पर असहाय और अकेला हो जाता है । समय तो निरन्तर गतिमान होता है और सभी चीजों को अतीत बना देता है ।

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के जीवन-दर्शन को बताया है कि किस प्रकार से वे जीवन को देखते-परखते और समझते हैं और किस प्रकार से उनके द्वारा वह जीवन जीया जाता है। मध्यमवर्ग के लोग जिस वस्तु में रूचि नहीं रखते, बिल्कुल उसी प्रकार की दूसरी वस्तुओं के बारे में उनका चिंतन बहुत बड़ा हो जाता है और वे इसके बारे में गहराई से सोचकर इसका निवारण करने की कोशिश करते हैं । उनके द्वारा यह भी सोचा जाता है कि सभी लोग पैसे के पीछे पड़े हैं । पैसा सुख-सुविधा दोनों दें, यह जरूरी नहीं है । पैसे से सुविधा तो खरीदी जा सकती है, लेकिन सुख तो मानसिक और आन्तरिक भावों के द्वारा ही मिल सकता है । वे यह भी सोचते हैं कि लोग जीवन में निरन्तर सुख की तलाश में रहते हैं, लेकिन उनकें सच्चा सुख नहीं मिल पाता। वे जीवन को नहीं समझ पाये हैं क्योंकि जीवन में सुखों की मात्रा कम है और दु:ख ज्यादा होते हैं जिन्हें मानव को भोगना ही पड़ता है। इसलिए जीवन को निरन्तर जीते रहना चाहिए, बिना स्वर्ग-नरक की चिंता किये। मध्यमवर्ग के लोगों ने समय को भी निरन्तर गतिमान कहा है जो किसी के लिए भी नहीं रूकता । मानव समय के साथ निरन्तर चलते रहना चाहता

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (अपना-अपना आकाश), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 244

है लेकिन एक समय के पश्चात् वह रूक जाता है, उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है, जिसमें वह असहाय व अकेला बन जाता है । समय सभी को अतीत बनाता चलता है।

मध्यमवर्ग के लोगों में जीवन-दर्शन की भावना देखते ही बनती है, जो उनके विचारों से व्यक्त हो जाती है । उनकी यह भावना हमें जीवन जीने के तरीकों से अवगत करवाती है ।

6.7 भाग्यवादिता का चित्रण

भाग्य पर विश्वास करना तथा जो होना निश्चित है, उसे भाग्यवादिता कहते हैं । मध्यमवर्ग के लोग पढ़े-लिखे होते हैं, वे भाग्य पर विश्वास नहीं करते लेकिन जीवन में कई ऐसी घटनाएं हो जाने के कारण वे भाग्य पर विश्वास करने लगते हैं और हर घटना उनके लिए भाग्य बन जाती है । 'इसीलिये' उपन्यास का अवस्थी भाग्य पर विश्वास नहीं करता है लेकिन जब अचानक उसे मीनाक्षी मिलती है तो इसे वह भाग्य मान लेता है । वह कहता है, "लेकिन इन दिनों मेरे साथ हो यह रहा है कि मैं भाग्य को मानने लगा हूं। तुम मुझे अक्समात् ही मिल गई और फिर हम दोनों इतने पास आ गए यह सिर्फ घटना है क्या? तुम इसे संयोग कहोगी, क्या संयोग और भाग्य के बीच बहुत ही बारीक रेखा नहीं है? कब संयोग भाग्य बन जाता है, इसे कोई बतला सकता है क्या? तुम बतला सकती हो? मैं तो नहीं हो । आज मैं तो उस बिन्दु पर पहुंच गया हूं जहाँ तुम्हारे लिए एक अवश मोह के अतिरिक्त मेरे पास सोचने को और कुछ नहीं रह गया है । जैसे कोई नवयुवक कभी भी मृत्यु के बारे में नहीं सोचता, वैसे ही मैं तुम्हारे अलावा - तुम्हें पाने की कल्पना के अलावा और कुछ नहीं सोच पाता ।"[1] मध्यमवर्ग के कई लोग अपने जीवन को भाग्य के भरोसे पर ही छोड़ देते हैं। अपनी आने वाली संतानों के भाग्य को भी अपने से जोड़ लेते हैं। "पता नहीं क्या होने वाला है । डॉक्टरों को शक है, बच्चों को शायद निमोनिया भी हो गया है, आंखें

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 31

खोलते ही वह बीमारी की मुसीबतों से घिर गई है । क्या वह भी मेरा ही भाग्य लेकर आई है। न, न, भगवान करे, ऐसा न हो ।"[1] बच्चों की समस्याओं और दु:खों को भी मध्यमवर्गीय लोग अपने साथ जोड़ लेते हैं तथा भाग्य को अपने ऊपर हावी बना लेते हैं ।

किसी भी प्रकार की घटना मध्यमवर्ग के लिए उनका भाग्य बन जाती है और वे अपने जीवन को भाग्य के अनुसार ही ढाल लेते हैं तथा उन्हें भगवान की करनी पर ही विश्वास हो जाता है । वे मानने लगते हैं कि भगवान ने जो उनकी किस्मत में लिख दिया है, वही उनके साथ हो रहा है और इसमें किसी का कोई दोष नहीं है।

6.8 ईश्वर में आस्था-अनास्था का चित्रण

भगवान् में विश्वास करना, उसमें आस्था रखना होता है तथा भगवान में विश्वास न करना, उसके प्रति अनास्था होती है । ये दोनों ही स्थितियां हमें मध्यमवर्गीय लोगों में देखने को मिलती हैं। देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्गीय लोगों की आस्था अनास्था को बड़े ही अच्छे ढंग से दिखाया है । 'इसीलिये' उपन्यास में अवस्थी का पिताजी जब अस्पताल में होता है तो उसके मुख से निकल जाता है, सब ठीक हो । हालांकि उसका पिताजी पुरी उम्र उसकी मां को मारता और पीटता रहा । "सुबह आठ बजे पिताजी को थियेटर में ले जाया गया । स्ट्रेचर पर लेटे हुए पिताजी तिने क्षीण और करुण लग रहे थे । जिन्दगी भर जल्लाद बना रहा व्यक्ति भी क्या इतना करुण लग सकता है, मैं सोच भी नहीं सकता था । लेकिन उस समय पिताजी के चेहरे को देखकर मैं ऊपर से नीचे तक सिहर उठा था और उनके प्रति करुणा उभर आई थी । मन में प्रार्थना के स्वर उभर आए थे- भगवान् सब ठीक हो।"[2] परमात्मा में उनकी अपार आस्था बहुत से स्थानों पर देखने को मिलती है । वे

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 86
2. वही, पृ० 14

अपनी जय-पराजय के समय उसी को याद करते हैं और दु:ख के समय तो उनके मुख से अनायास ही 'भगवान्' शब्द निकल आता है । वह एक स्थान पर कहता है, "भगवान् की कल्पना के मूल में इंसान का यही स्वार्थ रहा होगा कि वह उसकी अपेक्षाओं-आकांक्षाओं को पूरा करने का साधन बना रहे और इंसान अपनी पराजय और मजबूरी के क्षणों में भी यह आशा लगाए रखे कि भगवान उसका सहायक है और उसके आशीर्वाद से उसकी आकांक्षा-प्रार्थना पूरी होकर रहेगी ।"[1] मध्यमवर्गीय लोग हर परिस्थिति में परमात्मा को याद करते हैं ताकि उनके जीवन में किसी भी प्रकार का दु:ख या कष्ट अधिक समय तक न रहे और ईश्वर को मेहर उन पर सदा बनी रहे । 'गुरुकुल' उपन्यास में मध्यमवर्गीय ओछेलाल की ईश्वर भक्ति को दिखाया गया है । "ट्रेन में डॉ० ओछे लाल का अधिकांश समय आंखें मूंदकर प्रार्थना करते हुए ही बीता । बार-बार उनकी आंखों के सामने आशीर्वाद देती साईंबाबा की मूर्ति अवतरित होती है और उनके सिर पर हाथ रखकर लुप्त हो जाती। डॉ० ओछेलाल फिर ध्यान मग्न होकर साईंबाबा का आह्वान करते और चाहते कि साईं बाबा उनके सिर पर हाथ रखें रहें । उनके पास ही बर्थ पर बैठ जाएं और अगर बाबा को तकलीफ होती हो तो वह खुद नीचे फर्श पर बैठने के लिये भी तैयार थे । लेकिन साईंबाबा ने ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया । वह पहले की तरह प्रकट होते रहे और प्रकट होकर लुप्त होते रहे ।"[2] मध्यमवर्ग के लोग अपने परमात्मा को हमेशा खुश देखना चाहते हैं । उनकी खुशी के लिए वे स्वयं कष्ट उठाने के लिए हर समय तैयार रहते हैं । इसके साथ-साथ उनके मन में मन्दिर आदि देखने की इच्छा भी होती है, जो उनकी आस्तिकता को दिखाती है । देवेश ठाकुर के उपन्यास 'शून्य से शिखर तक' में वैशाली अपने पति दुष्यन्त से महालक्ष्मी का मंदिर देखने की इच्छा व्यक्त करती है ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (इसीलिये), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 59
2. वही, देवेश ठाकुर रचनावली-3 (गुरुकुल), पृ० 91

'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में एक स्थान पर यह भी दिखाया गया है कि मध्यमवर्गीय वैशाली परमात्मा पर विश्वास नहीं करती लेकिन जब विलास को चोट लगती है और वह अस्पताल में होता है तो वह उसके जीवन के लिये प्रार्थना करती है । इस वर्ग के लोग भगवान और उसकी करनी में विश्वास करते हैं । "वे जानते हैं, जीवन में सबको सब कुछ नहीं मिल जाता । अपनी अनेक रचनाओं में उन्होंने इस भाव को अभिव्यक्ति दी है । वे समझते हैं और उनको विश्वास है कि जो कुछ जितने समय के लिये मिल जाए हमें उसमें संतोष कर लेना चाहिए । उसे ही भगवान का उपहार मान कर श्रद्धा के साथ ग्रहण कर लेना चाहिए ।"[1]

मध्यमवर्ग के लोगों में ईश्वर में अनास्था होने के साथ-साथ किन्हीं घटनाओं के कारण आस्था उत्पन्न हो जाती है, जो पूरी उम्र उनके दिलों-दिमाग पर छाई रहती है और वे अपने ईश्वर को अपने सहायक के रूप में मानते हैं ताकि किसी भी कष्ट या दु:ख के समय भगवान् उनके कष्टों और दु:खों को दूर कर देगा । वे ईश्वर की खुशी में ही अपनी खुशी समझते हैं और उसके लिए हर प्रकार के कष्ट सहने के लिए भी हमेशा तैयार रहते हैं ।

6.9 भक्ति, पूजा, व्रत का चित्रण

मध्यमवर्ग के लोग भक्ति, पूजा, व्रत आदि भी करते हैं जो देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में दिखाया है । इस वर्ग के लोग कोई भी कार्य करने से पूर्व गणेश की पूजा करते हैं और धूप बत्ती लगाते हैं । 'जनगाथा' उपन्यास में दिखाया गया है कि कलाकार गणेश बनाते हैं और उनकी पूजा करते हैं क्योंकि इसी के द्वारा उनकी आजीविका चलती है । लोग अपन-अपने सामर्थ्य के अनुसार ही गणेश की पूजा करते हैं । "कुछ कलाकार साल-भर गणेश बनाते रहते हैं । कागज के गणेश । मिट्टी के गणेश । प्लास्टर ऑफ पेरिस के गणेश । छोटे गणेश । बड़े भीमकाय गणेश । मंझोले गणेश ।

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (शून्य से शिखर तक), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 226

सभी अपनी-अपनी सामर्थ्य के गणेशों को पूजते हैं। शान्त और सरल गणेश । मूसक की सवारी करते गणेश । पार्वती की गोद में बैठे गणेश । वर्षों से गणेश बनते रहे हैं और वर्षों से कुछ कलाकारों की आजीविका इन्हीं गणेशों से चल रही है।"[1]

यदि मध्यमवर्गीय परिवारों में किसी को कुछ हो जाता है तो वे पूजा, व्रत, तीर्थ-यात्राएं आदि करते हैं ताकि सब कुछ ठीक हो सके और उनका जीवन ठीक ढंग से चल सके । 'शून्य से शिखर तक' उपन्यास में आनन्द को जब बचपन में ही लकवा मार जाता है तो उसके लिए हर प्रकार के प्रयत्न किये जाते हैं । "उनका आनंद। वह साल भर का ही था कि लम्बे ज्वर के बाद उसके शरीर के निचले भाग को लकवा मार गया । उसको सामान्य अवस्था में लाने के सभी प्रयत्न बेकार हो गए । बड़े-बड़े डॉक्टरों का उपचार, यज्ञ, तीर्थ-यात्राएं कुछ भी काम नहीं आया ।"[2]

मध्यमवर्ग के लोग ईश्वर की भक्ति, पूजा और व्रत आदि भी करते हैं ताकि उनके जीवन में किसी भी प्रकार का दु:ख या कष्ट न आये और यदि आ भी जाये तो उनके निवारण के लिए इन्हीं माध्यमों का सहारा लेते हैं । इस वर्ग के लोग अपने घरों में लक्ष्मी, गणेश, विष्णु आदि भी लगाते हैं ताकि उनके जीवन में सुखी शांति बनी रहे । समय-समय पर ये लोग यज्ञ और तीर्थ-यात्राएं भी करते रहते हैं ।

देवेश ठाकुर ने अपने उपन्यासों में मध्यमवर्ग के धार्मिक एवं दार्शनिक यथार्थ को बड़े ही अच्छे ढंग से व्यक्त किया है । उन्होंने दिखाया है कि मध्यमवर्गीय नारी पर अपने संस्कारों के कारण ऐसे प्रभाव पड़े हैं जिसके कारण वह भीड़-भाड़ और व्यस्तता की जिन्दगी स्वीकार नहीं कर पाती और

---

1. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-2 (जनगाथा), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 355
2. रोहिणी शिवबालन (प्र०सं०), देवेश ठाकुर रचनावली-3 (शून्य से शिखर तक), संकल्प प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण-1992, पृ० 164

मजे की जिंदगी जीना चाहती है जिसमें किसी भी प्रकार के बन्धन न हों और उसकी सोच सकारात्मक होती है । मध्यमवर्गीय पुरुष संस्कारों के कारण एक तरफ तो वह सीधी-सादी जिंदगी जीना चाहता है लेकिन वह भी उसे नहीं मिल पाती और उसे अपनी पूरी जिन्दगी दु:खों में व्यतीत करनी पड़ती है तो दूसरी ओर उच्च मध्यमवर्गीय व्यक्ति सेक्स को ही अपना जीवन मानता है और किसी भी बात को वह बेझिझक कह देता है और पैसों के बल पर दूसरे लोगों पर अपना दबाव बनाना चाहता है ।

इस वर्ग के लोग चिंतनशील प्रवृत्ति के होते हैं तथा वे किसी भी वस्तु को देखकर चिंतन-मनन करते हैं । किसी भी बात को देखकर या सुनकर भविष्य में क्या होने वाला है, उसकी आशंका उन्हें हो जाती है और वे अपशकुन-शकुन के चक्कर में पड़ जाते हैं और भविष्य के प्रति चिंतित हो जाते हैं जो उनकी निराशा का कारण होता है जिससे उनका जीवन कष्टमय और दूभर हो जाता है। ये लोग पाप के फल में भी विश्वास करते हैं और मानते हैं कि बुराई का फल हमेशा बुरा होता है । इसलिए मनुष्य को सदा अच्छे कार्य करने चाहिये । उनमें जीवन-दर्शन की अपार भावना होती है । वे जीवन को अच्छी प्रकार से समझने की शक्ति रखते हैं और जीवन में आने वाले दु:खों और कष्टों का निवारण करने की भरपूर कोशिश करते हैं ।

इस वर्ग के लोग भाग्य पर भी विश्वास करते हैं और जो कुछ उनके पास है, उसे भगवान का दिया और अपना भाग्य मानते हैं। किसी भी प्रकार की असफलता या दु:ख को वे अपने भाग्य में होना मानते हैं । ईश्वर के प्रति भी उनमें आस्था-अनास्था दोनों हैं लेकिन उनकी अनास्था किसी घटना को देखकर या कष्टमय जीवन में आस्था का रूप धारण कर लेती है । वे ईश्वर को ही अपना सब कुछ मानते हैं । उनकी भक्ति में कष्टमय जीवन जीने की प्रवृत्ति होती है और वे अपने ईश्वर के लिए कुछ भी करने के लिए हर समय तैयार रहते हैं और समय-समय पर हवन, तीर्थ-यात्राएँ आदि भी करते रहते हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देवेश ठाकुर के उपन्यासों में हमें मध्यमवर्गीय धार्मिक एवं दार्शनिक यथार्थ का पता चलता है, जो उनके जीवन को आगे बढ़ाने, उसे समझने और ज्ञान देने में बहुत सहायता करते हैं तथा उनकी मानसिकता और ईश्वर शक्ति को हमारे समक्ष रखा है ।